Journal of Advances in Developmental Research (IJAIDR)
E-ISSN: 0976-4844 ● Website: www.ijaidr.com ● Email: editor@ijaidr.com

भारतीय साहित्य, संस्कृति और सभ्यता में तृतीय प्रकृति का मूल्य एवं महत्त्व

डॉ. वंदना

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी, राजकीय महिला महाविद्यालय बदायूं

भारतीय सभ्यता के सुदीर्घ और वैविध्यपूर्ण इतिहास में तृतीय प्रकृति के अस्तित्व की अवधारणाएं सदैव अत्यंत सूक्ष्म, समावेशी और दार्शनिक गहराई से ओत-प्रोत रही हैं। 'तृतीय प्रकृति' का विचार केवल एक आधुनिक विमर्श नहीं है बल्कि यह भारतीय ज्ञान परंपरा की उस शाश्वत धारा का हिस्सा है जिसने मनुष्य को केवल पुरुष और स्त्री के द्वैत तक सीमित नहीं रखा। प्राचीन वैदिक काल से लेकर वर्तमान डिजिटल युग तक तृतीय प्रकृति ने भारतीय साहित्य, संस्कृति और सामाजिक संरचना में एक विशिष्ट और अपरिहार्य स्थान प्राप्त किया है। यह विमर्श न केवल जैविक पहचान का विश्लेषण करता है, बल्कि यह उस सभ्यतागत स्वीकार्यता को भी रेखांकित करता है जहाँ प्रकृति की विविधताओं को 'विकृति' के बजाय 'ईश्वरीय सृजन' के एक विस्तार के रूप में देखा गया। भारतीय मनीषा में 'प्रकृति' शब्द का अर्थ ही मूल स्वभाव है और इस अर्थ में तृतीय प्रकृति का अस्तित्व उतना ही स्वाभाविक और मान्य रहा है जितना कि प्रथम (पुरुष) और द्वितीय (स्त्री) प्रकृतियों का

भारतीय दर्शन और व्याकरण शास्त्र में तृतीय प्रकृति की पहचान के लिए 'प्रकृति' शब्द का उपयोग अत्यंत व्यापक अर्थों में किया गया है। महर्षि पाणिनि से लेकर वात्स्यायन तक के ग्रंथों में तृतीय प्रकृति का वर्णन एक स्थापित सामाजिक और व्याकरणिक वास्तविकता के रूप में मिलता है। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से लिंग का निर्धारण केवल जननांगों के आधार पर नहीं, बल्कि गुणों, व्यवहार और भाषाई संरचना के आधार पर भी किया गया है।

वात्स्यायन द्वारा रचित 'कामसूत्र' (लगभग दूसरी शताब्दी ईस्वी) भारतीय काम-शास्त्र का एक ऐसा आधारभूत स्तंभ है जो समाज के प्रत्येक वर्ग के यौनिक और सामाजिक आचरण पर प्रकाश डालता है। कामसूत्र में स्पष्ट रूप से तीन प्रकृतियों का उल्लेख है: पुरुष प्रकृति, स्त्री प्रकृति और तृतीय प्रकृति यहाँ तृतीय प्रकृति का अर्थ उन व्यक्तियों से है जो न तो पूर्णतः पुरुष हैं और न ही स्त्री अथवा जिनका व्यवहार और यौनिक झुकाव इन दोनों श्रेणियों से भिन्न है। वात्स्यायन ने इस प्रकृति के लोगों के लिए विशेष आचार-संहिता और उनके सामाजिक अधिकारों का वर्णन किया है जो यह प्रमाणित करता है कि प्राचीन काल में उनकी एक निश्चित और स्वीकृत सामाजिक भूमिका थी।

भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' में, जो भारतीय कला परंपरा का सर्वोपरि ग्रंथ है, तृतीय प्रकृति की भूमिकाओं का सूक्ष्म वर्णन प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र के चौबीसवें अध्याय में लिंग आधारित अभिनय के नियमों की चर्चा करते समय तृतीय प्रकृति को एक स्वतंत्र श्रेणी के रूप में रखा गया है। यहाँ अभिनय को 'लोकधर्मी' और 'नाट्यधर्मी' के रूप में विभाजित किया गया है जिसमें तृतीय प्रकृति के पात्रों का चित्रण समाज के यथार्थ को प्रतिबिंबित करने के लिए आवश्यक माना गया है।

धर्मशास्त्रों में विशेष रूप से 'मनुस्मृति' में तृतीय प्रकृति के जैविक उद्भव पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। मनु के अनुसार, पुरुष बीज (शुक्र) की अधिकता से पुरुष, स्त्री बीज (शोणित) की अधिकता से स्त्री और यदि दोनों बीज समान या दुर्बल हों तो नपुंसक

या तृतीय प्रकृति की संतान उत्पन्न होती है।यहाँ 'नपुंसक' शब्द का उपयोग प्रायः प्रजनन क्षमता के अभाव को दर्शाने के लिए किया गया है न कि किसी अपमानजनक संदर्भ में मनुस्मृति में लिंग पहचान को प्रजनन अंगों और क्षमता पर आधारित माना गया है किंतु साथ ही उनके धार्मिक और सामाजिक अस्तित्व को भी नकारा नहीं गया है। यद्यपि कुछ स्मृतियों में उन्हें कतिपय अनुष्ठानों से वंचित रखने की बात कही गई है किंतु उनके प्रति मानवीय दृष्टिकोण का सदैव समावेश रहा है।

भारतीय पुराणों और महाकाव्यों में तृतीय प्रकृति के पात्र केवल हाशिए पर नहीं रहे बल्कि वे कई महत्वपूर्ण घटनाओं के केंद्र में रहे हैं। रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथ इस वर्ग के आध्यात्मिक और रणनीतिक महत्त्व को उजागर करते हैं।

भगवान श्रीराम के वनवास गमन के समय का प्रसंग इस समुदाय के प्रति ईश्वरीय स्नेह और उनके आध्यात्मिक महत्त्व का सबसे प्रमुख उदाहरण है । जब श्रीराम अयोध्या छोड़कर चित्रकूट की ओर प्रस्थान कर रहे थे तो अयोध्या की समस्त प्रजा उनके पीछे चलने लगी तमसा नदी के तट पर श्रीराम ने अत्यंत भावुक होकर जनता को संबोधित करते हुए कहा कि सभी 'नर और नारी' अपने घर वापस लौट जाएं । मर्यादा पुरुषोत्तम के इन शब्दों का अक्षरशः पालन करते हुए पुरुष और स्त्रियाँ तो लौट गए परंतु जो व्यक्ति तृतीय प्रकृति के थे वे वहीं रुक गए । उनके तर्क के अनुसार, श्रीराम ने केवल 'नर और नारी' को लौटने को कहा था चूँकि वे इन दोनों श्रेणियों में नहीं आते थे इसलिए उन्होंने अपने आराध्य की प्रतीक्षा करना ही उचित समझा ।

कहा जाता है कि वे चौदह वर्षों तक उसी स्थान पर रहकर श्रीराम की प्रतीक्षा करते रहे वनवास की अवधि समाप्त होने पर जब श्रीराम वापस लौटे और उन्हें वहीं पाया तो वे उनकी अटूट निष्ठा और भक्ति से द्रवित हो उठे । इस अवसर पर श्रीराम ने उन्हें वरदान दिया कि पृथ्वी पर जब भी कोई मंगल कार्य होगा उनके द्वारा दिया गया आशीर्वाद फलीभूत होगा । यही पौराणिक कारण है कि आज भी भारतीय समाज के प्रत्येक उत्सव चाहे वह विवाह हो या जन्मोत्सव में तृतीय प्रकृति समुदाय की उपस्थिति और उनके आशीर्वाद को अत्यंत शुभ माना जाता है ।

महाभारत में तृतीय प्रकृति का संदर्भ और भी अधिक जटिल और रणनीतिक हैं। कुरुक्षेत्र का युद्ध केवल शस्त्रों का नहीं बल्कि पहचान और सत्य का भी युद्ध था जिसमें तृतीय प्रकृति के पात्रों ने निर्णायक भूमिका निभाई ।

शिखंडी का प्रसंग तृतीय प्रकृति की तरलता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। पूर्व जन्म में अंबा और इस जन्म में स्त्री के रूप में जन्मी शिखंडी ने स्थूणाकर्ण नामक यक्ष की सहायता से पुरुषत्व प्राप्त किया था। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भीष्म पितामह ने शिखंडी पर बाण चलाने से इनकार कर दिया था क्योंकि उनके लिए वह जन्म से स्त्री थी । भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह समझाया कि शिखंडी की वर्तमान पहचान और योद्धा के रूप में उसका कौशल ही मान्य होना चाहिए । शिखंडी की इसी 'मध्यवर्ती' स्थिति ने पांडवों की जीत का मार्ग प्रशस्त किया जो यह दर्शाता है कि प्राचीन भारत में युद्ध जैसे कठोर क्षेत्रों में भी तृतीय प्रकृति की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता था।

इसी प्रकार स्वयं अर्जुन ने अज्ञातवास के दौरान 'वृहन्नला' का रूप धारण किया था । राजा विराट के दरबार में वृहन्नला ने उत्तरा को नृत्य और संगीत की शिक्षा दी यह उदाहरण प्रमाणित करता है कि कला और सांस्कृतिक शिक्षा के क्षेत्रों में इस वर्ग का विशेष प्रभाव था । वृहन्नला के रूप में अर्जुन का गायों की रक्षा के लिए युद्ध करना यह भी सिद्ध करता है कि एक तृतीय प्रकृति की पहचान शौर्य और वीरता के मार्ग में बाधक नहीं थी ।

महाभारत के दक्षिण भारतीय संस्करणों और लोक कथाओं में अर्जुन और नाग राजकुमारी उलूपी के पुत्र अरावन (इरावन) की कथा अत्यंत श्रद्धा के साथ सुनाई जाती है पांडवों की विजय के लिए देवी काली को एक राजकुमार की बलि देनी थी जिसके लिए अरावन ने सहर्ष अपना आत्म-बलिदान स्वीकार किया । उसकी अंतिम इच्छा थी कि वह मृत्यु से पूर्व विवाह करे परंतु कोई भी राजकुमारी एक दिन के वैधव्य के लिए तैयार नहीं थी तब भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं 'मोहिनी' का रूप धारण किया और अरावन से विवाह किया अगले दिन अरावन की बलि के पश्चात मोहिनी ने एक विधवा की तरह विलाप किया ।

इस पौराणिक घटना की स्मृति में तमिलनाडु के कूवागम गाँव में आज भी विश्व का सबसे बड़ा तृतीय प्रकृति उत्सव मनाया जाता है । यहाँ हजारों तृतीय प्रकृति के लोग स्वयं को मोहिनी के रूप में देखते हैं और अरावन के साथ प्रतीकात्मक विवाह करते हैं । यह उत्सव केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं है बल्कि यह तृतीय प्रकृति के लोगों के सामूहिक दुख, मिलन और उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान का उत्सव है । यह भारतीय सभ्यता की उस व्यापकता को दर्शाता है जहाँ एक पुरुष (श्रीकृष्ण) का स्त्री रूप धारण कर विवाह करना भी दिव्यता का हिस्सा माना गया।

मध्यकालीन भारत में, विशेष रूप से दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य के दौरान, तृतीय प्रकृति (जिन्हें ख्वाजासरा या नाज़िर कहा जाता था) के मूल्य और महत्त्व में एक नया और शक्तिशाली अध्याय जुड़ा । इस काल में वे केवल हरम के रक्षक नहीं थे बल्कि वे प्रशासन, सेना और राजनीति के अत्यंत प्रभावशाली स्तंभ थे। मुगल इतिहास में तृतीय प्रकृति को उनकी वफादारी, प्रशासनिक दक्षता और रणनीतिक बुद्धिमत्ता के कारण 'सांकेतिक पूंजी के रूप में देखा जाता था चूंकि उनका अपना कोई परिवार या वंश नहीं होता था इसलिए शासकों को उनसे उत्तराधिकार के युद्ध या विद्रोह का कोई भय नहीं रहता था । इसी अटूट विश्वास के कारण उन्हें सम्राट के सबसे निकटवर्ती पदों पर नियुक्त किया जाता था ।

अकबर से लेकर औरंगजेब के शासनकाल तक कई ख्वाजासराओं ने उच्च मनसबदार, सैन्य अधिकारी और प्रांतीय गवर्नर के रूप में कार्य किया । जहांगीर के काल में इतबार खान और एतमाद खान जैसे नाम अत्यंत गौरव के साथ लिए जाते थे। जिन्हें सम्राट ने 'विश्वासपात्र' की उपाधि दी थी इतबार खान ने आगरा के किले की सुरक्षा की जिम्मेदारी संभाली थी जबकि अन्य ख्वाजासराओं ने गुजरात जैसे महत्वपूर्ण प्रांतों का शासन चलाया । इनकी सबसे महत्वपूर्ण भूमिका हरम और बाहरी दुनिया (बाजार और दरबार) के बीच सूचनाओं के आदान-प्रदान और मध्यस्थता की थी । वे निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों की सीमाओं के संरक्षक थे । उनकी यह पहुँच उन्हें साम्राज्य की राजनीति में अत्यंत प्रभावशाली बनाती थी। वे राजकुमारों और राजकुमारियों के शिक्षक और सलाहकार भी होते थे । सम्राट औरंगजेब की बीमारी के दौरान साम्राज्य की स्थिरता बनाए रखने में उनके वफादार तृतीय प्रकृति के सलाहकारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही जिन्होंने सूचनाओं के प्रवाह को नियंत्रित किया । मुगल चित्रकला में भी उन्हें सम्राट के अत्यंत निकट उनके चंवरधारी या रक्षक के रूप में चित्रित किया गया है जो उनके उच्च सामाजिक स्तर का प्रमाण है ।

भारतीय सभ्यता में तृतीय प्रकृति के गौरवशाली इतिहास को सबसे गहरा आघात ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान लगा। विक्टोरियन नैतिकता और ईसाई जेंडर बाइनरी (पुरुष और स्त्री का कठोर विभाजन) से प्रेरित होकर अंग्रेजों ने इस समुदाय को 'अप्राकृतिक' और 'समाज के लिए खतरा' घोषित कर दिया ।1871 का 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' भारतीय तृतीय प्रकृति समुदाय के लिए एक काला अध्याय सिद्ध हुआ । इस अधिनियम के भाग में तृतीय प्रकृति समुदाय को एक 'अपराधी जाति' के रूप में पंजीकृत करने का प्रावधान था । अंग्रेजों का मानना था कि यह समुदाय अनैतिकता फैलाता है और बच्चों के अपहरण तथा जबरन बधियाकरण में लिप्त है ।

इस कानून के माध्यम से निम्नलिखित दमनकारी कदम उठाए गए:
पंजीकरण और निगरानी: सभी तृतीय प्रकृति समुदाय के सदस्य को पुलिस के पास अपना नाम और निवास पंजीकृत करना अनिवार्य था ।
सार्वजनिक नृत्य पर प्रतिबंध: सार्वजनिक स्थानों पर उनके पारंपरिक नृत्य, संगीत और महिलाओं के वस्त्र पहनने को दंडनीय अपराध बना दिया गया । उनके अधिकारों का हनन किया जाने लगा, वे संपत्ति रखने, वसीयत बनाने, उपहार देने या किसी बच्चे को गोद लेने के कानूनी अधिकार से वंचित कर दिए गए तथा उनकी गिरफ्तारी के विशेष अधिकार पुलिस को प्रदान कर दिए गए। पुलिस को बिना वारंट के उन्हें गिरफ्तार करने और 16 वर्ष से कम आयु के बच्चों के साथ पाए जाने पर इन्हें तत्काल प्रभाव से जेल भेजने का अधिकार दिया गया ।इस कानून ने न केवल उनकी आजीविका के पारंपरिक स्रोतों (नेग और बधाई) को समाप्त कर दिया बल्कि उन्हें समाज की नजरों में 'अछूत' और 'संदिग्ध' बना दिया । इसी काल में 'सेक्शन 377' के साथ मिलकर तृतीय प्रकृति के अस्तित्व को पूरी तरह से कलंकित कर दिया गया। जिसके घाव आज भी समाज में 'कलंक' के रूप में विद्यमान हैं ।
स्वतंत्रता के पश्चात कई दशकों तक भारतीय साहित्य और सिनेमा में तृतीय प्रकृति को केवल उपहास के पात्र के रूप में ही चित्रित किया गया किंतु 21वीं सदी के प्रारंभ से हिंदी साहित्य में 'किन्नर विमर्श' एक सशक्त आंदोलन के रूप में उभरा है । समकालीन लेखकों ने उनकी शारीरिक विशिष्टता के पीछे छिपे उनके मानवीय दर्द, उनके आत्म-सम्मान के संघर्ष और उनकी सामाजिक आकांक्षाओं को स्वर दिया है

नीरजा माधव का उपन्यास 'यमद्वीप' (2009) हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श का प्रस्थान बिंदु माना जाता है । यह उपन्यास 'नाज बीबी' (पूर्व नाम नंदरानी) की कहानी है, जिसे उसके माता-पिता बहुत प्यार करते हैं और पढ़ाना चाहते थे किंतु समाज और तृतीय प्रकृति गुरुओं के दबाव में उसे घर छोड़ना पड़ता है । उपन्यास में गुरु महताब के शब्द समाज की कठोर वास्तविकता को दर्शाते हैं: "माताजी किसी विद्यालय में आज तक हिजड़ों को पढ़ते देखा है, किसी कुर्सी पर बैठा देखा है?"

'यमद्वीप' ने पहली बार यह सवाल उठाया कि क्या शारीरिक भिन्नता किसी व्यक्ति के बुनियादी मानवीय अधिकारों को छीन सकती है । उपन्यास में तृतीय प्रकृति समुदाय के लोगों द्वारा का एक अनाथ शिशु को अपनाना जिसे सभ्य समाज ने छोड़ दिया था उनकी संवेदनशीलता का उत्कृष्ट उदाहरण है । वे कहते हैं "अरे हम हिजड़े हैं, हिजड़े इंसान नहीं हैं क्या ,मुँह फेर लें?" । यह उपन्यास समाज की 'उत्पादन और उपयोगिता' की राजनीति पर कड़ा प्रहार करता है।

चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा' (2016) आधुनिक भारत में एक किन्नर के अस्तित्वगत संकट का सबसे यथार्थवादी चित्रण है । यह उपन्यास विनोद (बिन्नी) नामक एक शिक्षित युवक के माध्यम से समाज की मानसिकता को झकझोरता है । विनोद एक प्रतिष्ठित परिवार से है और गणित विषय में सर्वोत्कृष्ट नंबर लाने वाला छात्र है किंतु उसकी शारीरिक बनावट के कारण उसे समाज द्वारा ', चक्षुपीड़ा मान लिया जाता है ।विनोद अपनी माँ (बा) को लिखे सत्रह पत्रों के माध्यम से

अपना दुख व्यक्त करता है । वह कहता है— "किन्नरों के धड़ के नीचे लिंग न सही, धड़ के ऊपर मस्तिष्क भी नहीं है, यह कैसे सोच लिया आपने?" । यह उपन्यास शिक्षा को ही उनकी मुक्ति का एकमात्र मार्ग बताता है किंतु साथ ही सरकारी फार्मों में तृतीय प्रकृति के कॉलम न होने जैसी व्यावहारिक समस्याओं को भी उजागर करता है । इस कृति के लिए चित्रा मुद्गल को 2018 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

प्रदीप सौरभ का उपन्यास 'तीसरी ताली' किन्नर समुदाय के भीतर के अंतर्विरोधों और उनकी मानवीय भावनाओं को गहराई से रेखांकित करता है । यह उपन्यास गरीबी और सामाजिक बहिष्कार के कारण किन्नर पेशा अपनाने की विवशता को दर्शाता है । एक शक्तिशाली उद्धरण में नायक कहता है "मैं मर्द रहूँ औरत रहूँ या फिर हिजड़ा बन जाऊँ, इसमें किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता, पेट की आग तो न जाने बड़े-बड़ों को क्या-क्या बना देती है" । यह उपन्यास यह भी दिखाता है कि कैसे एक मध्यमवर्गीय परिवार में तृतीय प्रकृति बच्चे का जन्म उत्सव के स्थान पर शोक का कारण बन जाता है । तृतीय प्रकृति समुदाय की अपनी एक अत्यंत संगठित और प्राचीन सामाजिक संरचना है, जो उन्हें समाज के बहिष्कार के बावजूद सुरक्षा और सहारा प्रदान करती है । इसे 'घराना' व्यवस्था या 'जमात' परंपरा कहा जाता है ।जब एक बच्चे को उसके जन्म के उपरांत उसके जैविक परिवार द्वारा त्याग दिया जाता है, तो ये घराने उसे अपनाते हैं । यहाँ 'गुरु' केवल एक शिक्षक नहीं होता बल्कि वह माता और पिता दोनों की भूमिका निभाता है । चेला अपने गुरु की सेवा करता है और बदले में उसे सुरक्षा, भोजन और समुदाय में स्थान मिलता है । यह संबंध 'शब्द' और परंपराओं पर आधारित होता है ।घराने के भीतर अनुशासन अत्यंत कठोर होता है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा 'मैं हिजड़ा, मैन लक्ष्मी' में इन नियमों का वर्णन मिलता है कैसे चलना है, पानी कैसे परोसना है, और गुरु का सम्मान कैसे करना है , यह एक प्रकार की ऐसी व्यवस्था है जो मुख्यधारा के समाज से बाहर अपनी एक स्वतंत्र दुनिया का निर्माण करता है।

तृतीय प्रकृति समुदाय की आजीविका मुख्य रूप से तीन स्तंभों पर टिकी है:

- बधाई और नेग: जन्मोत्सव और विवाहों पर आशीर्वाद देकर धन संग्रह करना, जिसे समाज में 'शुभ' माना जाता है ।
- भिक्षावृत्ति: ट्रेनों, बसों और सार्वजनिक स्थलों पर मांगना, जो प्रायः विवशता का परिणाम है ।
- यौन कार्य: शिक्षा और रोजगार के अभाव में तृतीय प्रकृति समुदाय के कुछ लोग इस असुरक्षित पेशे में धकेल दिए जाते हैं ।हालाँकि वर्तमान में शिक्षा और कानूनी अधिकारों के प्रसार के साथ उनकी आर्थिक गतिविधियों में बदलाव आ रहा है ।

21वीं सदी का दूसरा दशक तृतीय प्रकृति के अधिकारों के संघर्ष में एक स्वर्णिम युग के रूप में उभरा है।न्यायपालिका के हस्तक्षेप और स्वयं समुदाय की सक्रियता ने उन्हें सभ्यता की मुख्यधारा में पुनः स्थापित करना प्रारंभ कर दिया है ।
2014 में भारत के उच्चतम न्यायालय ने एक युगांतकारी फैसले में तृतीय प्रकृति के लोगों को 'थर्ड जेंडर' (तृतीय लिंग) के रूप में कानूनी मान्यता प्रदान की । न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि लिंग की पहचान व्यक्ति का मौलिक अधिकार है और इसे केवल जैविक अंगों तक सीमित नहीं रखा जा सकता । इस फैसले ने उनके लिए मतदान, आधार कार्ड, पैन कार्ड और सरकारी नौकरियों में आरक्षण का मार्ग प्रशस्त किया है ।आज के भारत में तृतीय प्रकृति के लोग केवल 'आशीर्वाद' देने वाले नहीं हैं, बल्कि वे नीति-निर्माता और समाज-सुधारक के रूप में भी उभर रहे हैं ।शबनम मौसी मध्य प्रदेश के सोहागपुर से स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में जीतकर तृतीय प्रकृति समुदाय से भारत की पहले

विधायक बनीं । उनकी जीत ने यह सिद्ध किया कि एक तृतीय प्रकृति समुदाय का सदस्य भी भी जनसेवा और प्रशासन में कुशल हो सकता है । वे 14 से अधिक भाषाओं की ज्ञाता हैं जो उनकी बौद्धिक क्षमता का प्रमाण है ।
तृतीय प्रकृति समुदाय की सदस्य आशा उत्तर प्रदेश के जौनपुर में ग्राम प्रधान के पद पर उनकी जीत ग्रामीण भारत में बदलती मानसिकता का प्रतीक है । उन्होंने 826 मतों के भारी अंतर से जीत हासिल की, जो यह दर्शाता है कि जनता अब लिंग से ऊपर उठकर वफादारी और काम को महत्त्व दे रही है ।

तृतीय प्रकृति की डॉ. प्रिया जो केरल की रहने वाली हैं भारत की पहली डॉक्टर बनकर चिकित्सा के क्षेत्र में एक नई मिसाल कायम की है । उनका लक्ष्य केवल सामान्य रोगियों का इलाज करना नहीं बल्कि अपने समुदाय के उपेक्षित लोगों की सेवा करना भी है ।

किन्नर अखाड़ा: हिंदू धर्म की सनातनी परंपरा में तृतीय प्रकृति समुदाय के सदस्यों ने अपना स्वयं का 'अखाड़ा' स्थापित किया है और कुंभ मेलों में उन्हें महामंडलेश्वर जैसी उपाधियां प्रदान की गई हैं जो उनके धार्मिक महत्त्व की पुनः स्थापना है।

निष्कर्षतः भारतीय साहित्य, संस्कृति और सभ्यता में तृतीय प्रकृति का मूल्य एवं महत्त्व केवल ऐतिहासिक तथ्यों तक सीमित नहीं है बल्कि यह हमारी सभ्यता की समावेशी आत्मा का प्रतीक है । प्राचीन काल में जहाँ उन्हें ऋषियों द्वारा 'प्रकृति' का एक वैध विस्तार माना गया है वहीं मध्यकाल में उन्होंने अपनी वफादारी और बुद्धिमत्ता से राजसत्ता में उच्च स्थान प्राप्त किया । औपनिवेशिक काल की संकीर्णता ने निश्चित रूप से उन्हें हाशिये पर धकेलने का प्रयास किया किंतु आधुनिक भारत अपनी जड़ों की ओर लौटते हुए उन्हें पुनः वह गौरव प्रदान कर रहा है जिसका वे अधिकार रखते हैं ।हिंदी साहित्य में उठी 'किन्नर विमर्श' की लहर ने उन्हें केवल 'बधाई देने वाले पात्र' से हटाकर 'विचारशील मनुष्य' के रूप में प्रतिष्ठित किया है । आज की आवश्यकता यह है कि हम 'वसुधैव कुटुंबकम्' की विचारधारा का वास्तविक सम्मान करते हुए इस समुदाय को घृणा और पूर्वाग्रहों से मुक्त कर समाज की संरचनात्मक व्यवस्था में पूर्ण भागीदार बनाएं । सभ्यता का विकास तभी पूर्ण माना जाएगा जब तृतीय प्रकृति के लोग भी अपनी विशिष्ट पहचान के साथ गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें और भारतीय सभ्यता की गौरवमयी यात्रा में अपना बराबर का योगदान दे सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बाजी, एन. (2017). समकालीन हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श. जे. एस. टी. (संपादक), *तीसरी दुनिया का यथार्थ: एक मूल्यांकन* (पृ. 35-37). विद्या प्रकाशन। [1]
2. भीष्म, एम. (2011). *किन्नर कथा*। सामयिक प्रकाशन। [1]
3. माधव, एन. (2002). *यमदीप*। सामयिक प्रकाशन। [2]
4. मुद्गल, सी. (2017). *पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा*। सामयिक प्रकाशन। [1]
5. सौरभ, पी. (2011). *तीसरी ताली*। वाणी प्रकाशन। [1]
6. शर्मा, जे. (2024). किन्नर विमर्श: कल आज और कल। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स (IJCRT)*, *12*(6).
7. भारत का उच्चतम न्यायालय। (2014)। *नेशनल लीगल सर्विसेज अथॉरिटी (NALSA) बनाम भारत संघ एवं अन्य* (रिट याचिका (सिविल) संख्या 400/2012)। [3]
8. विल्हेम, ए. डी. (2004)। *तृतीय-प्रकृति: पीपल ऑफ द थर्ड सेक्स*। गैल्वा (GALVA)। [4]
9. एजीपीई गोंडवाना जर्नल। (2020)। भारतीय इतिहास में किन्नर। *एजीपीई गोंडवाना जर्नल ऑफ हिस्ट्री, कल्चर एंड मेडिकल साइंसेज*। [5]